ISSN 2278-8808 SJIF 2014 = 4.889
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

उच्च शिक्षा में प्रशासन की समस्या

(श्रीमती) गीता सिंह, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर (बी0 एड0), डी0 वी० यन0 पी0 जी0, कालेज, गोरखपुर, गोरखपुर

प्रत्येक देश में उच्च शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है, क्योंकि उच्चकोटि के वैज्ञानिक, नेता, साहित्यकार तथा दार्शनिक विश्वविद्यालयों के प्रांगण से ही उत्पन्न होते है। ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत बनाने लिए विश्वविद्यालय महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है। शिक्षाविदों ने देश की प्राथमिक शिक्षा को शिक्षा की आधारशिला तथा उच्च शिक्षा को मुकुट और ताज के रुप में स्वीकार किया है। प्राचीन काल में हमारे देश में गुरुकुलों तथा आश्रमों में उच्च शिक्षा का विशेष स्थान था। प्राचीन काल में गुरुकुलों तथा आश्रमों में उच्च शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी। बौद्ध काल में ही हमारे देश में उच्च शिक्षा के लिए बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी। मुस्लिम काल में मदरसों में उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। आधुनिक युग मे उच्च शिक्षा की प्रगति निरन्तर बढ़ रही है और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों की संख्या में असाधरण वृद्धि हो रही है।

वर्तमान समय में उच्च शिक्षा का रुप जो हमें दिखायी पड़ता है उसका श्री गणेश अग्रेजों के आगमन से हुआ था। उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से उसका संख्यात्मक विकास अत्यन्त त्वरित गति से हुआ है। साथ ही दूसरी विशेष बात यह है कि उसका विकास आदि से अन्त तक अनियोजित रहा है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर गया है, छात्रों में ज्ञानार्जन की अभिलाषा नष्ट हो गयी है, शिक्षित व्यक्तियों के समक्ष बेरोजगारी की समस्या उपस्थित हो गई है, विभिन्न प्रकार के अपराधों को प्रोत्साहन मिल रहा है, इस प्रकार विभिन्न प्रकार की समस्याएं दृष्टिगत हो रही है। अतः इस शिक्षा के सम्बन्ध में यह कहा जाने लगा है कि देश की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में यह असमर्थ हो गयी है। अतः जैसा कि "कोठारी कमीशन" (1964–66) ने ठीक ही कहा है कि "भारत की समान्य भावना यह है कि उच्च शिक्षा की स्थिति असंतोष जनक और भयप्रद भी है"।

भारत में उच्च शिक्षा के विकास के साथ–साथ अनेक समस्याएं उत्पन्न होती रही है। उच्च शिक्षा की समस्याओं को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. संख्यात्मक विकास जन्य समस्याएं
2. गुणात्मक विकास सम्बन्धी समस्याएं
3. संगठनात्मक तथा प्रशासनिक समस्याएं।

प्रस्तुत शोध पत्रों में संगठनात्मक तथा प्रशासनिक समस्याओं पर विचार प्रस्तुत है। संगठनात्मक तथा प्रशासनिक समस्याओं के विचार से पूर्ण शैक्षिक प्रशासन का क्या अर्थ है, इसकी क्या उपादेयता है। इसकी जानकारी आवश्यक है।

शैक्षिक प्रशासान का अर्थ :–

शैक्षिक प्रशासन समान्य प्रशासन का अंग होता है। इसका तात्यर्प्य शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था से है। दूसरे भाब्दों में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा शिक्षालय से सम्बन्धित आन्तरिक तथा वाहय व्यवस्थाओं का समेकित, स्वरुप हो शैक्षिक प्रशासन है। इसका सम्बन्ध शिक्षा के समस्त पक्षों से होता है। इस प्रकिया का सम्बन्ध शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठयकम अध्ययन विधिंया, मूल्यांकन एवं परीक्षा, वित्तीय व्यवस्था, भवन, उपकरण, पुस्तकालय आदि के रख रखाव से होता है। वास्तव में शिक्षा में वांछित सुधार तथा परिर्वतन हेतु शैक्षिक प्रशासन ही उत्तरदायी है। नवीन धारणा के अनुसार शिक्षा प्रशासन का उत्तरदायित्व संस्था के प्रधानाचार्य, शिक्षकों, छात्रों, निजी प्रबन्धकों, स्थानीय निकायों, सरकारी तंत्र, राजनेताओं और अभिभावकों के ऊपर है। वास्तव में यह प्रकिया जटिल प्रकिया नहीं है बल्कि इसे गत्यात्मक और नवीन होना चाहिए।

शैक्षिक प्रशासन को स्पष्ट करते हुए फॉक्स, विश और रफनर ने लिखा है– "शैक्षिक प्रशासन सेवा करने वाली ऐसी गतिविधि है जिसके द्वारा शैक्षिक प्रकिया के लक्ष्यों को प्रभावकारी ढ़ग से प्राप्त किया जा सकता है।

शैक्षिक प्रशासान की आवश्यकता एवं महत्व :–

शैक्षिक प्रशासन की उपोदयता के बारे में विभिन्न बातें उल्लेखनीय है :–

1. प्रत्येक देश के विकास में शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आधुनिक युग में विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है और सबके लिए बिना किसी भेदभाव के शिक्षा ग्रहण करने की सुविधा है। इस स्थिति मे शिक्षा का सुसंगठित प्रशासन आवश्यक हो जाता है।

2. चुनाव पद्धति लोकतांत्रिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। किसी एक राजनीतिक दल सत्तारुढ़ होता है कभी दूसरा । प्रत्येक राजनीतिक दल की विचार धाराएं और नीतियां अलग–अलग होती है। इस स्थिति मे भी शिक्षा प्रशासन का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। राजनीतिक सत्ता के परिर्वतन से शिक्षा में कार्य अव्यवस्था उत्पन्न न हो तथा समस्त कार्य सुचारु रूप से चलता रहे इसके लिए शैक्षिक प्रशासन आवश्यक होता है।

3. शैक्षिक नियोजन का समुचित क्रियायान्वयन भी शैक्षिक प्रशासन की कुशलता पर निर्भर करता है। शैक्षिक प्रशासन ऐसा होना चाहिए जिससे शैक्षिक लक्ष्यों को असानी से प्राप्त किया जा सके।

4. शिक्षा व्यवस्था को सुचारु रुप से संचालित करने के लिए मानवीय एवं भौतिक संसाधनों की आवश्यता पड़ती है। इन संसाधनों को उपलब्ध कराना भी शैक्षिक प्रशासन का उत्तदायित्व होता है, किन्तु केवल संसाधनों की उपलब्धता से ही शिक्षा व्यवस्था सुचारु रुप से नही चल सकती। विभिन्न संसाधनों मे समन्वय भी आवश्यक है इसके लिए भी शैक्षिक प्रशासन उत्तरदायी होता है।

5. शिक्षकों और छात्रों के मार्ग दर्शन हेतु भी शैक्षिक प्रशासन की आवश्यकता होती है। शिक्षा में नवीन विधियों में क्रियायान्वयन और उसमें वांछित सुधार लाने के लिए भी शैक्षिक प्रशासन उत्तरदायी है ।

शैक्षिक प्रशासान का स्वरुप :

वर्तमान समय में शैक्षिक प्रशासन के दो रुप दिखायी देते है :

(अ) प्रशासन का केन्द्रित स्वरुप

(ब) प्रशासन का विकेन्द्रित स्वरुप

(अ) प्रशासन का केन्द्रित स्वरुप :

जब प्रशासन का पूर्ण दायित्व केन्द्रिय सत्ता के अधीन होता है, तो उसे प्रशासन का केन्द्रिय स्वरुप कहा जाता है। इस व्यवस्था में स्थानीय सरकारों का कोई महत्व नहीं होता। राज्य सत्ता ही शिक्षा पर हावी होती है। प्रशासन का यह स्वरुप साम्यवादी और समाजवादी विचारा धाराओं से प्रभावित है। इस विचार धारा का प्रारम्भ सबसे पहले रुस में हुआ। इस व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा संरचना का स्वरुप और व्यवस्था एक जैसी होती है। सभी नागरिकों के लिए एक जैसी संस्थाये होती है, सभी वर्गों और क्षेत्रों के लोगों के लिए शिक्षा के समान अवसर होते है। शिक्षकों की योग्यता सेवा दशाएं, वेतन वृद्वियों आदि के नियम एक जैसे होते है। इस व्यवस्था में पाठ्यकम, पाठ्य पुस्तकें, मूल्यांकन प्रणाली और शिक्षा के माध्यम को लेकर कोई विवाद नहीं होता।

शैक्षिक प्रशासन के केन्द्रीयकरण से जहॉ पर लाभ है वहॉ कुछ दोष भी हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि शैक्षिक प्रशासन भी केन्द्रिय पद्धति लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। प्रशासन का यह रुप छोटे राज्यों में ही अपनाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रशासन से शिक्षा के विकास की स्वाभाविक गति अवरुद्ध हो जाती है।

(ब) प्रशासन का विकेन्द्रित स्वरुप :

विकेन्द्रित प्रशासन की अवधारणा का विकास इग्लैण्ड और अमेरिका से हुआ। इन देशों में शिक्षा संस्थाओं को स्वायत्तता दी गयी और शिक्षा व्यवस्था को निजी प्रबन्ध तंत्र के हाथ मे दे दिया गया। भारत में शैक्षिक प्रशासन का विकेन्द्रित स्वरुप ब्रिटिश सरकार की देन है।

शिक्षा प्रशासन के इस स्वरुप के अन्तर्गत शिक्षा का उत्तरादायित्व किसी एक प्रशासन सत्ता के हाथ मे केन्द्रित नहीं होता, बल्कि इसमें सभी सहयोग देते है। केन्द्रिय सरकार राज्य सरकारें स्थानीय

निकायों और निजी अभिकरणों आदि सभी के सहयोग से शिक्षा की प्रशासनिक व्यवस्था की जाती है। इस व्यवस्था से शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरादायित्व किसी एक संस्था पर नहीं बल्कि सभी संस्थाओं के सहयोग पर निर्भर करता है।

शैक्षिक प्रशासन के विकेन्द्रिकरण से लोकतांत्रिक परम्पराओं का निर्वाह होता है। शिक्षा के प्रचार मे स्थानीय लोगों से सहयोग प्राप्त होता है और शैक्षणिक योजनाओं को क्रियान्वित करने में शिक्षा की निम्नतर इकाईयों भी अपना सहयोग देती है। जनता अपनी आवश्यकताओं के अनुरुप शिक्षा की व्यवस्था करती है और शिक्षा की नीतियों के क्रियान्वयन में सभी निकायों की भागीदारी होती है। इस कारण इस व्यवस्था में शिक्षा का विकास स्वाभाविक गति से होता है। शिक्षा प्रशासन का विकेन्द्रित स्वरुप एक आदर्श व्यवस्था है, परन्तु यदि विभिन्न निकायों में सहयोग व समन्वय न हो तो यह व्यवस्था सुचारु रुप से नहीं चल सकती। इस व्यवस्था के अर्न्तगत प्रशासन के प्रति उत्तदायी संस्थायें और निकाय अपने कर्तव्यों को पूरा न करने हेतु एक दूसरे पर दोषारोपण करते है। इस प्रकार विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक प्रशासन की समस्या उत्पन्न होती है।

विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक प्रशासान की समस्या :

यहाँ पर विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक प्रशासन की समस्याओं का उल्लेख किया जा रहा है।

अ) केन्द्रीय स्तर पर शिक्षा प्रशासन की समस्याएं :

केन्द्रीय स्तर पर शिक्षा प्रशासन की निम्न समस्याएं है।

1. देश की विशालता के फलस्वरूप केन्द्रीय शैक्षिक प्रशासन की व्यवस्था समीचीन नहीं है और केन्द्र सम्पूर्ण देश में प्रशासनिक सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम नहीं है।
2. संविधान द्वारा केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी है, फलस्वरुप प्रशासनिक व्यवस्था में केन्द्र का हस्तक्षेप बहुत अधिक रहता है, जिससे कि राज्यों की स्वतंत्रता छिन जाती है।
3. राज्य अपने शैक्षिक प्रशासनिक व्यवस्था को कारगर बनाने के लिए केन्द्र पर निर्भर रहते है।
4. अनेक मुद्दों पर केन्द्र शिक्षा प्रशासन की नीति निर्धारित करता है, राज्य उसके अनुरुप शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पाते है।
5. सीमित संसाधनों के फलस्वरुप केन्द्र सभी राज्यों को वित्तीय सहायता अनुदान देने मे असमर्थ रहता है, फलस्वरुप प्रशासनिक कार्यो में बाधा उत्पन्न होती है।
6. अपने देश में शिक्षा प्रशासन का उत्तरादायित्व केन्द्र व राज्यों पर सम्मिलित रुप से है। इस दोहरी व्यवस्था के फलस्वरुप अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है।

ब) राज्य स्तर पर प्रशासनिक समस्याएं :

राज्य स्तर पर शिक्षा प्रशासन की निम्न समस्याएं है।

1. कुछ राज्यों में एक शिक्षा सलाहकार परिषद है और कुछ मे विभिन्न अंगों हेतु अलग–अलग परिषदों का गठन किया गया है। इस स्थिति में मुख्य सलाहकार परिषद और विशिष्ट सलाहकार परिषदों मे सामन्जस्य नहीं स्थापित हो पाता और कार्य में बाधा उत्पन्न होती है।

2. राज्यों में शिक्षा प्रशासन और राज्य के अन्य स्वैच्छिक संगठनों के बीच तालमेल का अभाव दिखायी देता है। राज्य शिक्षा प्रशासन अन्य संगठनों को अपने दबाव में रखने का प्रयास करता है। फलस्वरुप सहयोग व सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता है।

3. राज्यों की शिक्षा प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में जनता शिक्षाविदों और समाजिक प्रतिनिधियों का सहयोग पूरी तरह से प्राप्त नहीं हो पाता।

4. वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण शिक्षा प्रशासन का समुचित संगठन करने में बाघा उत्पन्न हुई है। विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों के क्रिया कलापों में सामान्जस्य का अभाव दिखायी देता है।

स) स्थानीय स्तर पर शिक्षा प्रशासन की समस्याएं :–

1. यह देखा जाता है कि स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थानों का आधार प्रायः राजनीतिक होता है और ये शैक्षिक कार्यो में रुचि नहीं लेती। जिसके फलस्वरुप प्रशासन की उपेक्षा होती हैं।

2. स्थानीय संस्थायें राज्य सरकार के नियन्त्रण में होती है, फलस्वरुप वे स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पाती।

3. स्थानीय संस्थाओं के संसाधन सीमित होते है, उन्हें अनेक महत्वपूर्ण कार्यो को पूरा करना होता है और इस कारण वे शिक्षा की उपेक्षा करते है।

4. स्थानीय संस्थाओं के ऊपर राजनीतिक और स्थानीय लोगों का इतना दबाव होता है कि वे निष्पक्षतापूर्वक कार्य नहीं कर पाती इस स्थिति में पक्षपात के कारण शिक्षा प्रशासन का उदेश्य सीमित हो जाता है।

ऊपर विभिन्न स्तरों पर शिक्षा प्रशासन की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। इससे सम्बन्धित उच्च शिक्षा के प्रशासन की मुख्य समस्याओं का उल्लेख करते हुए समाधान का उपाय भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) समुचित शैक्षिक नियोजन की समस्या :

उच्च शिक्षा में शैक्षिक प्रशासन की सर्वप्रमुख समस्या अविवेकपूर्ण शैक्षिक नियोजन भी है। यद्यपि शिक्षा को समवेत योजना का एक अंग स्वीकार किया गया है और शिक्षा की उपयोगिताओं, लक्ष्य एवं वित्तीय आंवटन निर्धारित किये गये है। उनमें छात्रों के नामांकन, विद्यालयों और शिक्षकों की संख्या वृद्धि को ही लक्ष्य की प्राप्ति मान लिया गया है, जिसके परिणाम स्वरुप शैक्षिक नियोजन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ और शैक्षिक स्तर गिरता गया। शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत यह कभी नहीं निर्धारित किया गया कि अगले पाँच वर्षो में हमारे संसाधनों का अधिकतम उपयोग किस तरह से होगा और संसाधनों की उपयोगिता का आंकलन किस तरह किया जाएगा। इस तरह संस्थागत नियोजन पर भी ध्यान दिया गया है। इन सबका परिणाम यह है कि शिक्षा–प्रशासन में शिथिलता आ गयी है।

उपर्युक्त समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षा का नियोजन अत्यन्त कुशलता और दूरदर्शिता के साथ किया जाये। शिक्षा नियोजन का लक्ष्य केवल संख्यात्मक वृद्धि न

होकर गुणात्मक उत्थान भी हो। अपने सीमित वित्तीय संसाधनों को अत्यन्त कुशलता और दूरदर्शिता के साथ व्यय किया जाये तथा अपव्यय को रोका जा सके जिससे कि अधिकत्तम लाभ की प्राप्ति की जा सके।

(2) असंतुलित शिक्षा प्रसार की समस्या :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा का प्रसार अत्यन्त तीव्र गति से हुआ है। सभी स्तरों पर छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है अतः छात्र संख्या के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन हो गया है। शिक्षा के प्रसार की गति एकांगी है। देश के अनेक क्षेत्रों और वर्गों में अभी भी शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ है। देश के दूरगामी क्षेत्र शिक्षा–संस्थाओं से वंचित है। एक ओर तो शिक्षित बेरोजगारों की अपार संख्या है, और दूसरी ओर बहुत से लोग शिक्षा से वंचित है, शिक्षा प्रशासन की यह अत्यन्त भीषण समस्या है।

असंतुलित शिक्षा के प्रसार की समस्या के समाधान हेतु शिक्षा प्रसार की नीति को अपनाना आवश्यक है। शिक्षा के एकांगी प्रसार को रोका जाना चाहिए । शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रों और समाज के पिछड़े वर्गो के लोगों के शिक्षा प्रसार हेतु नये संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए। बढ़ती हुई प्रवेश समस्या और शिक्षित बेरोजगारी की समस्या हेतु शिक्षा को व्यावसायिक रुप प्रदान किया जाना चाहिए । नई शिक्षा नीति में इस क्षेत्र में कार्य करने का संकल्प लिया गया है।

(3) शिक्षा के विभिन्न प्रयत्नों में समन्वय की समस्या :

भारत में शिक्षा–व्यवस्था का कार्य अलग–अलग तंत्रों के हाथ में है। केन्द्र सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय विकास द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। केन्द्र के रक्षा मंत्रालय और रेलवे मंत्रालय भी अपने पृथक विद्यालय चलाते है। राज्यों में भी अलग–अलग प्रकार के विद्यालय है। राजकीय विद्यालय, निजी प्रबन्धकों द्वारा संचालित विद्यालय, स्थानीय निकायों द्वारा संचालित विद्यालय। ये संगठन शिक्षा की व्यवस्था तो करते हैं परन्तु प्रशासनिक दृष्टि से इनमें आपस में कोई ताल–मेल नहीं होता जिसके फलस्वरुप एक ओर असमानता बढ़ती है और दूसरी ओर संसाधनों का अपव्यय होता है। विभिन्न प्रशासनिक तंत्रों के कार्यो में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए विभिन्न प्रशासनिक तंत्रों की संयुक्त बैठक निरन्तर बुलाई जानी चाहिए। जिसमें वे मिलकर कार्य योजना बनायें और सभी उसे पूरी तरह से लागू करने का प्रयास करें। असमानता को दूर किया जाय और संसाधनों के अपव्यय को रोका जाय।

(4) समान शिक्षा–व्यवस्था की समस्या :

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में समान शैक्षिक व्यवस्था की समस्या भी अत्यन्त गंभीर समस्या है। केन्द्र–शासित क्षेत्रों और राज्यों की शिक्षा–व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। यह अन्तर शैक्षिक संरचना, पाठ्यकम, शिक्षा के माध्यम और मूल्यांकन सभी पक्षों मे देखा जा सकता है। शिक्षा के प्रशासन हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि पूरे राष्ट्र में शिक्षा की संरचना समान हो सभी राज्यों में

10+2+3 की संरचना को स्वीकार किया जाना चाहिए। शिक्षा का पाठ्यकम, पाठन विधियाँ और परीक्षा प्रणाली का स्तर भी एक समान होना चाहिए। इसमें फलस्वरूप छात्रों को सुविधा होगी और एक राज्य से दूसरे राज्यों में जाने पर किसी तरह की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ेगा।

उत्तरदायित्व की भावना की समस्या :

वर्तमान समय में अपने ऊपर दायित्व न लेने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और उच्च शिक्षा का प्रशासन भी इस रोग से मुक्त नही है। उच्च शिक्षा प्रशासन से जुड़े हुए अधिकारी अपने ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते बल्कि दूसरे अधिकारियों पर थोप देते है। प्रशासनिक अधिकारी स्वंय को जनता का प्रतिनिधि न मानकर शासन तंत्र का प्रतिनिधि मानते हैं और इसके फलस्वरूप शिक्षा प्रशासन में कठिनाई उत्पन्न होती है।

इस समस्या से उबरने के लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षा से जुड़े सभी व्यक्तियों मे कर्तव्यबोध की भावना विकसित हो। उन्हें टाल–मटोल की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए। शिक्षा से जुड़े प्रशासनिक अधिकारियों को यह समझना चाहिए कि वे अप्रत्यक्ष रुप से जनता के प्रति ही उत्तरदायी है और जनता का हित सर्वोपरि है।

शिक्षा–प्रशासन में लोकतात्रिक मूल्यों की समस्या :

शिक्षा का प्रशासन लोकतात्रिक परम्परओं पर अधारित होना चाहिए। बड़े ही दुःखद स्थिति है कि भारत मे प्रचलित उच्च शिक्षा प्रशासन में अंग्रेजी तंत्र की झलक दिखायी देती है और उसमें लोकतांत्रिक मूल्यों का अभाव है।

उच्च शिक्षा प्रशासन को लोकतांत्रिक रुप प्रदान किया जाना चाहिए। शिक्षा का नियोजन ऊपर से न करके नीचे से किया जाना चाहिए। समाज के सभी लोगों को मिलजुलकर शिक्षा का कार्य करना चाहिए। शिक्षा अधिकारियों को अधिकारिक भाषा का प्रयोग न करके सहयोग की बात करनी चाहिए। सबको अपनी बात कहने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए । विश्वविद्यालयों तथा सम्बन्धित महाविद्यालयों में नजदीकी सम्बन्ध होना चाहिए। यदि किसी नीति का निर्धारण विश्वविद्यालय द्वारा किया जाता है, तो महाविद्यालयों के शिक्षकों की राय भी ली जानी चाहिए।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे विश्वविद्यालय की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विश्वविद्यालयों को छोड़कर जो केन्द्र से सम्बन्ध रखते हैं, उन्हें छोड़कर सभी राज्य सरकारों के अन्तर्गत आतें है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का विजीटर राष्ट्पति होता है तथा उसी के समानान्तर राज्यों मे स्थित विश्वविद्यालयों का चांसलर वहाँ का राज्यपाल होता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय का प्रशासन चलाने के लिए वाइस चांसलर होता है। जो विभिन्न संस्थाओं एवं सीनेट, एक्जीक्यूटिव कौंसिल, एकेडेमिक कौंसिल एवं बोर्ड आफ स्टडीज आदि की सहायता से आन्तरिक प्रबन्ध हेतु उत्तरदायी होता है। विश्वविद्यालय, स्वायत्शासी संस्थाएं हैं। जिनके अर्न्तगत सरकार प्रत्यक्ष रुप से हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

विश्वविद्यालय के प्रबन्ध एवं नियंत्रण की समस्या अत्यन्त गंभीर है। विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता को लेकर देश मे पर्याप्त विवाद है। कुछ लोगों की मान्यता है कि विश्वविद्यालय अपने प्रबन्ध, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण के सम्बन्ध में पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिए। दूसरा वर्ग ऐसा है जो यह मानता है कि विश्वविद्यालयों का अस्तित्व समाज हेतु है, जनता के धन से सरकार उन्हें वित्तीय सहायता देती है, फलस्वरुप नियोजन के इस युग में कुछ सीमा तक करदाताओं के प्रति उत्तरदायी सरकार का यह कर्तव्य होता है कि वह देखे कि शिक्षा अनुदान का उपयोग किस तरह से किया जा रहा है, और विश्वविद्यालय क विभिन्न कार्य समाजिक हित में उचित दिशा में न्यायपूर्वक ढंग से हो रहे हैं अथवा नहीं, इस स्थिति में राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नियन्त्रण एवं प्रशासन की समस्या की दुरुहता का अनुभव उतना स्थानीय शिक्षण विश्वविद्यालयों में नहीं होता, जितना कि उनसे सम्बन्धित डिग्री एवं पोस्ट डिग्री कालेजों मे होता है। ये महाविद्यालय माध्यमिक विद्यालयों की भाँति अधिकतर वयैक्तिक और धार्मिक संस्थाओं के अन्तर्गत चलते है, तथा उनमें भी वहीं दोष होता है, जो माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे होता है। इनमें से कुछ महाविद्यालयों क प्रबन्धकों का उद्देश्य लोक उपकार की भावना से शिक्षा का प्रसार करना है परन्तु अधिकतर ऐसे प्रबन्धक है जो इन महाविद्यालयों को अपनी आय का स्रोत समझते है और इन पर पूर्ण अधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहते है। अतः इन विसंगतियों को दूर करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा जगत से जुड़े विद्वतजनों की सहमति के अनुसार उच्च शिक्षा के प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ व प्रभावशाली बनाया जाय क्योंकि यदि किसी भी क्षेत्र में प्रशासनिक व्यवस्था समन्वित और सुदृढ़ नहीं होती, वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने मे पिछड़ जाती है।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ :

भारतीय शिक्षा का इतिहास – प्रो0० मदन मोहन, डा० मालती सास्वत
भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं – पी० डी0 पाठक
भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं – डा0 सीताराम जयसवाल
भारतीय शिक्षा का इतिहास – जौहरी एवं पाठक